
अपरोक्षानुभूति

प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

[भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित]

सं० १९८८ से २०२६ तक ५४,२५०

सं० २०४२ चौदहवाँ संस्करण २०,०००

कुल ७४,२५०

मूल्य साठ पैसे

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीहरिः

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-मङ्गलाचरण	५
२-ग्रन्थका प्रयोजन	५
३-साधन-चतुष्टय	६
४-विचारका प्रकार	७
५-आत्मानात्मविवेक	९
६-ज्ञानका स्वरूप	११
७-ज्ञानोपदेश	१२
८-द्वैत-मिथ्यात्व	१५
९-जगत्की ब्रह्मरूपता	१७
१०-प्रपञ्चका मिथ्यात्व	१८
११-ब्रह्मकी सर्वात्मकता	२०
१२-देहात्मताका निषेध	२२
१३-प्रारब्धका निराकरण	२६
१४-निदिध्यासनके पंद्रह अंग	२९
१५-समाधिके विघ्न	३६
१६-ब्राह्मी वृत्तिका महत्त्व	३६
१७-वृत्तिज्ञानका साधन	३८



श्रीगुरुचरणकमलेषु

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

अपरोक्षानुभूति

यस्य पादप्रभाध्यस्तः प्रगच्छो भाति भासुरः ।
तमहं सद्गुरुं वन्दे पूर्णानन्दं चिदात्मकम् ॥

मङ्गलाचरण

श्रीहरिं परमानन्दमुपदेशरमीश्वरम् ।
व्यापकं सर्वलोकानां कारणं तं नमाम्यहम् ॥ १ ॥

उन परमानन्दस्वरूप उपदेष्टा, ईश्वर, व्यापक और समस्त
लोकोंके कारण श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ ।

ग्रन्थका प्रयोजन

अपरोक्षानुभूतिर्वै प्रोच्यते मोक्षसिद्धये ।
सद्भिरेव प्रयत्नेन वीक्षणीया मुहुर्मुहुः ॥ २ ॥

अपरोक्षानुभूति मोक्ष-सिद्धिके लिये कही जाती है ।
सत्पुरुषोंको (इसे) प्रयत्नपूर्वक बारम्बार विचारना चाहिये ।

साधन-चतुष्टय

स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात् ।

साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादिचतुष्टयम् ॥ ३ ॥

अपने वर्णाश्रमधर्म और तपस्याद्वारा श्रीहरिको प्रसन्न करनेसे मनुष्योंको वैराग्यादि साधन-चतुष्टयकी प्राप्ति होती है ।

ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु वैराग्यं विषयेष्वनु ।

यथैव काकविष्टायां वैराग्यं तद्धि निर्मलम् ॥ ४ ॥

ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त समस्त विषयोंमें जो काकविष्टाके समान वैराग्य होना है वही निर्मल वैराग्य है ।

नित्यमात्मस्वरूपं हि दृश्यं तद्विपरीतगम् ।

एवं यो निश्चयः सम्यग्विवेको वस्तुनः स वै ॥ ५ ॥

आत्माका स्वरूप नित्य है और दृश्य उसके विपरीत (अनित्य) है—ऐसा जो दृढ़ निश्चय है वही आत्मवस्तुका विवेक है ।

सदैव वासनात्यागः शमोऽयमिति शब्दितः ।

निग्रहो बाह्यवृत्तीनां दम इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥

वासनाओंका सर्वदा त्याग करना शम कहलाता है और बाह्य-वृत्तियोंका रोकना दम कहा जाता है ।

विषयेभ्यः परावृत्तिः परमोपरतिर्हि सा ।

सहनं सर्वदुःखानां तितिक्षा सा शुभा मता ॥ ७ ॥

विषयोंसे पराङ्मुख होना ही परम उपरति है और सम्पूर्ण दुःखोंका सहन करना शुभ तितिक्षा मानी गयी है ।

निगमाचार्यवाक्येषु भक्तिः श्रद्धेति विश्रुता ।

चित्तैकाग्र्यं तु सल्लक्ष्ये समाधानमिति स्मृतम् ॥ ८ ॥

शास्त्र और आचार्यके वाक्योंमें भक्ति रखना श्रद्धा है और अपने वास्तविक लक्ष्यमें चित्तकी एकाग्रता ही समाधान कहलाता है ।

संसारबन्धनिर्मुक्तिः कथं मे स्यात्कदा विभो ।

इति या सुदृढा बुद्धिर्वक्तव्या सा मुमुक्षुता ॥ ९ ॥

‘प्रभो ! मेरी संसारबन्धनसे कब और किस प्रकार मुक्ति होगी ?’ ऐसी जो सुदृढ़ बुद्धि है उसीको मुमुक्षुता कहना चाहिये ।

विचारका प्रकार

उक्तसाधनयुक्तेन विचारः पुरुषेण हि ।

कर्तव्यो ज्ञानसिद्ध्यर्थमात्मनः शुभमिच्छता ॥१०॥

उपर्युक्त साधनोंसे युक्त अपने शुभकी इच्छावाले पुरुषको ही ज्ञान-प्राप्तिके लिये विचार करना चाहिये ।

नोत्पद्यते विना ज्ञानं विचारेणान्यसाधनैः ।

यथा पदार्थभानं हि प्रकाशेन विना क्वचित् ॥ ११ ॥

क्योंकि जिस प्रकार प्रकाशके बिना कभी पदार्थका भान नहीं होता, उसी प्रकार बिना विचारके और किसी साधनसे ज्ञान नहीं हो सकता ।

कोऽहं कथमिदं जातं को वै कर्तास्य विद्यते ।

उपादानं किमस्तीह विचारः सोऽयमीदृशः ॥ १२ ॥

‘मैं कौन हूँ ? यह (जगत्) किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? इसका कर्ता कौन है ? तथा इसका उपादान कारण क्या है ?’ वह विचार इस प्रकारका होता है ।

नाहं भूतगणो देहो नाहं चाक्षगणस्तथा ।

एतद्विलक्षणः कश्चिद्विचारः सोऽयमीदृशः ॥ १३ ॥

‘मैं भूतोंका संघातरूप देह नहीं हूँ और न इन्द्रियसमूह ही हूँ, बल्कि इनसे भिन्न ही कोई हूँ’ वह विचार इस प्रकारका होता है ।

अज्ञानप्रभवं सर्वं ज्ञानेन प्रविलीयते ।

सङ्कल्पो विविधः कर्ता विचारः सोऽयमीदृशः ॥ १४ ॥

‘सम्पूर्ण प्रपञ्च अज्ञानजन्य है, यह ज्ञान होनेपर लीन हो जाता है । नाना प्रकारका संकल्प ही इसका कर्ता है’ वह विचार इस प्रकारका होता है ।

एतयोर्यदुपादानमेकं सूक्ष्मं सदव्ययम् ।

यथैव मृदूघटादीनां विचारः सोऽयमीदृशः ॥ १५ ॥

‘जैसे घटादिका उपादान कारण मृत्तिका है, वैसे ही इन (अज्ञान और संकल्प) दोनोंका उपादान एक सूक्ष्म अविनाशी सत् है’ वह विचार इस प्रकारका होता है ।

अहमेकोऽपि सूक्ष्मश्च ज्ञाता साक्षी सदव्ययः ।

तदहं नात्र सन्देहो विचारः सोऽयमीदृशः ॥१६॥

मैं भी, जो केवल एक सूक्ष्म ज्ञाता साक्षी सत् और अविनाशी है, वही हूँ—इसमें सन्देह नहीं' वह विचार इस प्रकारका होता है ।

आत्मानात्मविवेक

आत्मा विनिष्कलो ह्येको देहो बहुभिरावृतः ।

तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम् ॥१७॥

आत्मा कलाहीन और एक है तथा देह अनेक तत्त्वोंसे गठित है; इन दोनोंकी जो एकता देखते हैं इससे बढ़कर और क्या अज्ञान होगा ?

आत्मा नियामकश्चान्तर्देहो बाह्यो नियम्यकः ।

तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम् ॥१८॥

आत्मा नियामक और अन्तर्वर्ती है तथा देह बाह्य और नियम्य है; इन दोनोंकी जो एकता देखते हैं इससे बढ़कर और क्या अज्ञान होगा ?

आत्मा ज्ञानमयः पुण्यो देहो मांसमयोऽशुचिः ।

तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम् ॥१९॥

आत्मा ज्ञानस्वरूप और पवित्र है तथा देह मांसमय और अपवित्र है; इन दोनोंकी जो एकता देखते हैं इससे बढ़कर और क्या अज्ञान होगा ?

आत्मा प्रकाशकः स्वच्छो देहस्तामस उच्यते ।

तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम् ॥२०॥

आत्मा सबका प्रकाशक और निर्मल है तथा देह तमोमय कहा जाता है; इन दोनोंकी जो एकता देखते हैं इससे बढ़कर और क्या अज्ञान होगा ?

आत्मा नित्यो हि सद्रूपो देहोऽनित्यो ह्यसन्मयः ।

तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम् ॥२१॥

आत्मा नित्य और सत्स्वरूप है तथा देह अनित्य और असत् है; इन दोनोंकी जो एकता देखते हैं इससे बढ़कर और क्या अज्ञान होगा ?

आत्मनस्तत्प्रकाशत्वं यत्पदार्थावभासनम् ।

नाग्न्यादिदीप्तिवद्दीप्तिर्भवत्यान्ध्यं यतो निशि ॥२२॥

पदार्थोंकी जो प्रतीति होती है उसमें आत्माका ही प्रकाशकत्व है । किन्तु आत्मज्योति अग्नि आदिकी ज्योतिके समान नहीं है, क्योंकि उनके अभावमें तो रात्रिके समय अन्धकार हो जाता है (पन्तु आत्मज्योतिका कभी अभाव नहीं होता) ।

देहोऽहमित्ययं मूढो धृत्वा तिष्ठत्यहो जनः ।

ममायमित्यपि ज्ञात्वा घटद्रष्टेव सर्वदा ॥२३॥

घटद्रष्टाके समान सर्वदा यह जानते हुए भी कि 'यह मेरा है' अहो ! मूढ पुरुष 'मैं देह हूँ' ऐसा मानता रहता है ।

ज्ञानका स्वरूप

ब्रह्मैवाहं समः शान्तः सच्चिदानन्दलक्षणः ।

नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥२४॥

मैं सम, शान्त और सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही हूँ; असत्स्वरूप देह मैं नहीं हूँ—इसीको बुधजन ज्ञान कहते हैं ।

निर्विकारो निराकारो निरवद्योऽहमव्ययः ।

नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥२५॥

मैं निर्विकार, निराकार, निर्मल और अविनाशी हूँ; असत्स्वरूप देह मैं नहीं हूँ—इसीको बुधजन ज्ञान कहते हैं ।

निरामयो निराभासो निर्विकल्पोऽहमाततः ।

नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥२६॥

मैं दुःखहीन, आभासहीन, विकल्पहीन और व्यापक हूँ; असत्स्वरूप देह मैं नहीं हूँ—इसीको बुधजन ज्ञान कहते हैं ।

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो नित्यमुक्तोऽहमच्युतः ।

नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥२७॥

मैं निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य, नित्यमुक्त और अच्युत हूँ; असत्स्वरूप देह मैं नहीं हूँ—इसीको बुधजन ज्ञान कहते हैं ।

निर्मलो निश्चलोऽनन्तः शुद्धोऽहमजरोऽमरः ।

नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥२८॥

मैं निर्मल, निश्चल, अनन्त, शुद्ध और अजर-अमर हूँ; असत्स्वरूप देह मैं नहीं हूँ— इसीको बुधजन ज्ञान कहते हैं ।

ज्ञानोपदेश

स्वदेहे शोभनं सन्तं पुरुषाख्यं च संमतम् ।

किं मूर्खं शून्यमात्मानं देहातीतं करोषि भोः ॥२९॥

रे मूर्ख ! अपने शरीरमें पुरुष नामक सुन्दर देहातीत और शास्त्रसम्मत आत्माके रहते हुए भी तू उसे शून्यरूप क्यों करता है ?

स्वात्मानं शृणु मूर्ख त्वं श्रुत्या युक्त्या च पूरुषम् ।

देहातीतं सदाकारं सुदुर्दर्शं भवादृशैः ॥३०॥

रे मूर्ख ! जो तुझ-जैसीको बड़ी कठिनतासे दिखलायी पड़ सकता है, उस अपने देहातीत सात्स्वरूप आत्मपुरुषका श्रुति और युक्तिपूर्वक श्रवण कर ।

अहंशब्देन विख्यात एक एव स्थितः परः ।

स्थूलस्त्वनेकतां प्राप्तः कथं स्याद्देहकः पुमान् ॥३१॥

अहं (मैं) शब्दसे प्रसिद्ध परात्मा एकमात्र स्थित है । (अर्थात् वह अनेक तत्वोंका संघात नहीं है) फिर, जो स्थूल है और अनेक भावोंको प्राप्त हो रहा है, वह देह पुरुष कैसे हो सकता है ?

अहं द्रष्टृतया सिद्ध्यो देहो दृश्यतया स्थितः ।

ममायमिति निर्देशात्कथं स्याद्देहकः पुमान् ॥३२॥

अहं दृष्टारूपसे सिद्ध है और शरीर, 'मेरा है' ऐसा कहा जानेके कारण दृश्यरूपसे स्थित है; फिर यह देह पुरुष कैसे हो सकता है ?

अहं विकारहीनस्तु देहो नित्यं विकारवान् ।

इति प्रतीयते साक्षात् कथं स्याद्देहकः पुमान् ॥३३॥

अहं विकाररहित है और देह सर्वदा विकारवान् है—यह स्पष्ट प्रतीत होता है; फिर यह देह पुरुष कैसे हो सकता है ?

यस्मात्परमिति श्रुत्या तथा पुरुषलक्षणम् ।

विनिर्णीतं विमूढेन कथं स्याद्देहकः पुमान् ॥३४॥

चतुर मनुष्योंने पुरुषका लक्षण 'यस्मात्परं*' इत्यादि श्रुतिसे निश्चित किया है, फिर यह देह पुरुष कैसे हो सकता है ?

सर्वं पुरुष एवेति सूक्ते पुरुषसंज्ञिते ।

अप्युच्यते यतः श्रुत्या कथं स्याद्देहकः पुमान् ॥३५॥

जब कि श्रुतिने पुरुषसूक्तमें भी कहा है कि 'सब कुछ पुरुष ही है' तो फिर यह देह पुरुष कैसे हो सकता है ?

असङ्गः पुरुषः प्रोक्तो बृहदारण्यकेऽपि च ।

अनन्तमलसंश्लिष्टः कथं स्याद्देहकः पुमान् ॥३६॥

* यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्वस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् ।

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥

जिससे पर या अपर तथा अणु या दीर्घ कुछ भी नहीं है और जे. एक ही दिव्यधाममें वृक्षके समान निष्कम्पभावसे स्थित है, उस पुरुषसे ही यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है ।

बृहदारण्यकमें भी पुरुषको असङ्ग कहा गया है; फिर अनन्त मलसे पूर्ण यह देह पुरुष कैसे हो सकता है ?

तत्रैव च समाख्यातः स्वयंज्योतिर्हि पूरुषः ।

जडः परप्रकाशोऽयं कथं स्याद्देहकः पुमान् ॥३७॥

वहीं यह भी बतलाया है कि पुरुष स्वयंप्रकाश है; फिर यह परप्रकाश जड देह पुरुष कैसे हो सकता है ?

प्रोक्तोऽपि कर्मकाण्डेन ह्यात्मा देहाद्विलक्षणः ।

नित्यश्च तत्फलं भुङ्क्ते देहपातादनन्तरम् ॥३८॥

कर्मकाण्डमें भी आत्माको देहसे पृथक् और नित्य ही बतलाया गया है। इसीसे वह देहपातके अनन्तर अपने कर्मोंका फल भोगता है।

लिङ्गं चानेकसंयुक्तं चलं दृश्यं विकारि च ।

अव्यापकमसद्रूपं तत्कथं स्यात्पुमानयम् ॥३९॥

लिङ्ग (सूक्ष्म) देह भी अनेक तत्त्वोंका संघात, चलायमान, दृश्य, विकारी, व्यापक और असत्स्वरूप है; वह भी पुरुष कैसे हो सकता है ?

एवं देहद्वयादन्य आत्मा पुरुष ईश्वरः ।

सर्वात्मा सर्वरूपश्च सर्वातीतोऽहमव्ययः ॥४०॥

इस प्रकार आत्मा पुरुष या ईश्वर (स्थूल-सूक्ष्म) दोनों प्रकारके शरीरों-से भिन्न है। अतः मैं सर्वात्मा, सर्वरूप, अविनाशी और सबसे परे हूँ।

द्वैत-मिथ्यात्व

इत्यात्मदेहभावेन प्रपञ्चस्यैव सत्यता ।

यथोक्ता तर्कशास्त्रेण ततः किं पुरुषार्थता ॥४१॥

शङ्का—इस प्रकार आत्मा और देहका भेद माननेसे भी, जैसी कि तर्कशास्त्रने भी प्रतिपादन की है, प्रपञ्चकी सत्यता तो रहती ही है; इससे क्या पुरुषार्थ सिद्ध हुआ ?

इत्यात्मदेहभेदेन देहात्मत्वं निवारितम् ।

इदानीं देहभेदस्य ह्यसत्त्वं स्फुटमुच्यते ॥४२॥

समाधान—यहाँतक आत्मा और देहका भेद दिखलाकर देहात्मभावका निराकरण किया गया है; अब देह-भेदके असत्यत्वका स्पष्ट वर्णन किया जाता है ।

चैतन्यस्यैकरूपत्वाद्भेदो युक्तो न कर्हिचित् ।

जीवत्वं च मृषा ज्ञेयं रज्जौ सर्पग्रहो यथा ॥४३॥

चैतन्य एकरूप है अतः उसका भेद किसी प्रकार उचित नहीं हो सकता । इस प्रकार जैसे रज्जुमें सर्पकी प्रतीति मिथ्या है उसी तरह जीवभावको भी मिथ्या जानना चाहिये ।

रज्ज्वज्ञानात्क्षणेनैव यद्वद्रज्जुर्हि सर्पिणी ।

भाति तद्वच्चितिः साक्षाद्विश्वाकारेण केवला ॥४४॥

रज्जुके अज्ञानसे जैसे एक क्षणमें ही वह सर्पिणी प्रतीत होने लगती है, वैसे ही साक्षात् शुद्ध चिति ही विश्वरूपसे भास रही है ।

उपादानं प्रपञ्चस्य ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्यते ।

तस्मात्सर्वप्रपञ्चोऽयं ब्रह्मैवास्ति न चेतर्त् ॥४५॥

प्रपञ्चका उपादानकारण ब्रह्मके अतिरिक्त और कोई नहीं है, अतः यह सम्पूर्ण प्रपञ्च ब्रह्म ही है और कुछ नहीं ।

व्याप्यव्यापकता मिथ्या सर्वमात्मेति शासनात् ।

इति ज्ञाते परे तत्त्वे भेदस्यावसरः कुतः ॥४६॥

शास्त्र कहता है कि सब कुछ आत्मा ही है, इसलिये (जगत् और ब्रह्मका) व्याप्य-व्यापकभाव मिथ्या है । इस परमतत्त्वके जान लेनेपर फिर भेदका अवसर ही कहाँ रहता है ?

श्रुत्या निवारितं नूनं नानात्वं स्वमुखेन हि ।

कथं भासो भवेदन्यः स्थिते चाद्वयकारणे ॥४७॥

श्रुतिने स्वयं ही नानात्वका निषेध किया है । कारणके अद्वितीय होनेपर भ्रम अन्य आभास कैसे हो सकता है ?

दोषोऽपि विहितः श्रुत्या मृत्योर्मृत्युं स गच्छति ।

इह पश्यति नानात्वं मायया वञ्चितो नरः ॥४८॥

‘मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है’ ऐसा कहकर श्रुतिने (नानात्वदर्शनमें) दोष भी बतलाया है । मनुष्य मायासे ठगा जाकर ही संसारमें नानात्व देखता है ।

जगत्की ब्रह्मरूपता

ब्रह्मणः सर्वभूतानि जायन्ते परमात्मनः ।

तस्मादेतानि ब्रह्मैव भवन्तीत्यवधारयेत् ॥ ४९ ॥

सम्पूर्ण भूत परमात्मा ब्रह्मसे ही उत्पन्न होते हैं; अतः ये सब ब्रह्म ही हैं—ऐसा निश्चय करना चाहिये ।

ब्रह्मैव सर्वनामानि रूपाणि विविधानि च ।

कर्माण्यपि समग्राणि बिभर्तीति श्रुतिर्जगौ ॥ ५० ॥

समस्त नाम, विविध रूप और सम्पूर्ण कर्मोंको ब्रह्म ही धारण करता है—ऐसा श्रुतिने कहा है ।

सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वं च शाश्वतम् ।

ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं च तथा भवेत् ॥ ५१ ॥

जिस प्रकार सुवर्णनिर्मित वस्तुओंकी सुवर्णता निरन्तर रहती है उसी प्रकार ब्रह्मसे उत्पन्न हुए पदार्थोंकी ब्रह्मता भी नित्य है ।

स्वल्पमप्यन्तरं कृत्वा जीवात्मपरमात्मनोः ।

यः संतिष्ठति मूढात्मा भयं तस्याभिभाषितम् ॥ ५२ ॥

जो मूढ़ जीवात्मा और परमात्मामें थोड़ा-सा भी अन्तर करता है उसके लिये श्रुतिने भय बतलाया है ।

यत्राज्ञानाद्भवेद् द्वैतमितरस्तत्र पश्यति ।

आत्मत्वेन यदा सर्वं नेतरस्तत्र चाण्वपि ॥ ५३ ॥

अस्मिन् सर्वाणि भूतानि ह्यात्मत्वेन विजानतः ।

न वै तस्य भवेन्मोहो न च शोकोऽद्वितीयतः ॥ ५४ ॥

जहाँ अज्ञानसे द्वैतभाव होता है वहीं कोई और दिखलायी देता है; जब सब आत्मरूप ही दिखलायी देता है तब अन्य कुछ भी नहीं रहता । उस अवस्थामें सम्पूर्ण भूतोंको आत्मभावसे जाननेवाले उस (महात्मा) को, कोई दूसरा न रहनेके कारण न मोह होता है और न शोक ही ।

अयमात्मा हि ब्रह्मैव सर्वात्मकतया स्थितः ।

इति निर्धारितं श्रुत्या बृहदारण्यसंस्थया ॥ ५५ ॥

क्योंकि यह आत्मा सर्वात्मभावसे स्थित हुआ ब्रह्म ही है—ऐसा बृहदारण्यशाखाकी श्रुतिने निश्चय किया है ।

प्रपञ्चका मिथ्यात्व

अनुभूतोऽप्ययं लोको व्यवहारक्षमोऽपि सन् ।

असद्रूपो यथा स्वप्न उत्तरक्षणबाधतः ॥ ५६ ॥

दूसरे क्षणमें न रहनेके कारण जैसे स्वप्न असत् है वैसे ही यह संसार, व्यवहारयोग्य और अनुभव होता हुआ भी, असत् है ।

स्वप्नो जागरणेऽलीकः स्वप्नेऽपि न हि जागरः ।

द्रुमेव लये नास्ति लयोऽपि ह्युभयोर्न च ॥ ५७ ॥

जागृतिमें स्वप्न अलीक हो जाता है, स्वप्नमें जागृति नहीं रहती

तथा सुषुप्तिमें (जागृति और स्वप्न) दोनों नहीं रहते और इन दोनोंमें सुषुप्ति नहीं रहती ।

त्रयमेवं भवेन्मिथ्या गुणत्रयविनिर्मितम् ।

अस्य द्रष्टा गुणातीतो नित्यो ह्येकश्चिदात्मकः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार सत्, रज, तम—इन तीन गुणोंसे उत्पन्न हुई ये तीनों अवस्थाएँ मिथ्या हैं, किन्तु इन तीनोंका द्रष्टा गुणोंसे परे नित्य एक और चित्स्वरूप है ।

यद्वन्मृदि घटभ्रान्ति शुक्तौ वा रजतस्थितिम् ।

तद्वद्ब्रह्मणि जीवत्वं भ्रान्त्या पश्यति न स्वतः ॥ ५९ ॥

जिस प्रकार मनुष्य भ्रमवश मिट्टीमें घड़ा और सीपीमें चाँदी देखता है उसी प्रकार वह भ्रमसे ब्रह्ममें जीवभाव देखता है, स्वतः नहीं ।

यथा मृदि घटो नाम कनके कुण्डलाभिधा ।

शुक्तौ हि रजतख्यातिर्जीवशब्दस्तथा परे ॥ ६० ॥

जिस प्रकार मिट्टीमें घड़ा, स्वर्णमें कुण्डल और सीपीमें चाँदी नाम-मात्रको ही हैं उसी प्रकार परब्रह्ममें जीव शब्द भी नाममात्र ही है ।

यथैव व्योम्नि नीलत्वं यथा नीरं मरुस्थले ।

पुरुषत्वं यथा स्थाणौ तद्वद्विश्वं चिदात्मनि ॥ ६१ ॥

जिस प्रकार आकाशमें नीलता, मरुभूमिमें जल और ठूँठमें पुरुषकी प्रतीति होती है उसी प्रकार चेतन आत्मामें विश्व भासता है ।

अपरोक्षानुभूति

यथैव शून्ये वैतालो गन्धर्वाणां पुरं यथा ।

यथाकाशे द्वि चन्द्रत्वं तद्वत्सत्ये जगत्स्थितिः ॥ ६२ ॥

जैसी शून्यमें वैताल और गन्धर्वनगरकी तथा आकाशमें दो चन्द्रमाओंकी स्थिति है वैसी ही सत्में संसारकी स्थिति है ।

यथा तरङ्गकल्लोलैर्जलमेव स्फुरत्यलम् ।

पात्ररूपेण ताम्रं हि ब्रह्माण्डौघैस्तथात्मता ॥ ६३ ॥

जैसे तरङ्गमालाओंके रूपसे सर्वथा जल और पात्ररूपसे तौबा ही स्फुरित होता है वैसे ही ब्रह्माण्डसमूहके रूपमें आत्मा ही स्फुरित हो रहा है ।

घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः ।

जगन्नाम्ना चिदाभाति ज्ञेयं तत्तदभावतः ॥ ६४ ॥

जिस प्रकार घट-नामसे पृथ्वी और पट-नामसे तन्तु भासते हैं उसी प्रकार जगत्-नामसे चित्-शक्ति भास रही है; उस- (जगत्-) का बाध करके उसे जानना चाहिये ।

ब्रह्मकी सर्वात्मकता

सर्वोऽपि व्यवहारस्तु ब्रह्मणः क्रियते जनैः ।

अज्ञानान्न विजानन्ति मृदेव हि घटादिकम् ॥ ६५ ॥

मनुष्योंके द्वारा जितना व्यवहार होता है वह सब ब्रह्महीकी सत्तासे होता है, किन्तु वे अज्ञानवश यह नहीं जानते । वास्तवमें घड़ा आदि सब मृत्तिका ही तो हैं ।

कार्यकारणता नित्यमास्ते घटमृदोर्यथा ।

तथैव श्रुतियुक्तिभ्यां प्रपञ्चब्रह्मणोरिह ॥६६॥

जिस प्रकार घट और मृत्तिकाकी कार्य-कारणता नित्य है उसी प्रकार श्रुति और युक्तिसे प्रपञ्च और ब्रह्मकी भी है । अर्थात् जैसे घटादिमें कारणरूपसे मृत्तिका सदैव रहती है वैसे ही ब्रह्म भी संसारमें सदा सर्वत्र विद्यमान है ।

गृह्यमाणे घटे यद्वन्मृत्तिका भाति वै बलात् ।

वीक्ष्यमाणे प्रपञ्चेऽपि ब्रह्मैवाभाति भासुरम् ॥६७॥

जिस प्रकार ग्रहण किये जानेवाले घड़ेमें मिट्टी बलात्कारसे प्रतीत होती है वैसे ही दिखायी देनेवाले प्रपञ्चमें भी ब्रह्म ही स्पष्ट भासता है ।

सदैवात्मा विशुद्धोऽपि ह्यशुद्धो भाति वै सदा ।

यथैव द्विविधा रज्जुर्ज्ञानिनोऽज्ञानिनोऽनिशम् ॥६८॥

आत्मा नित्य शुद्ध है फिर भी वह सर्वदा अशुद्ध प्रतीत होता है; जैसे कि एक ही रज्जु ज्ञानी और अज्ञानीको सदा दो प्रकारसे भासती है ।

यथैव मृन्मयः कुम्भस्तद्वद्देहोऽपि चिन्मयः ।

आत्मानात्मविभागोऽयं मुधैव क्रियतेऽबुधैः ॥६९॥

जिस प्रकार घड़ा मिट्टीरूप होता है उसी प्रकार देह भी चेतनरूप है । अज्ञानीजन व्यर्थ ही यह आत्मा और अनात्माका विभाग करते हैं ।

देहात्मताका निषेध

सर्पत्वेन यथा रज्जू रजतत्वेन शुक्तिका ।

विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता ॥७०॥

जिस प्रकार (अज्ञानवश) सर्परूपसे रज्जुका और चाँदीरूपसे स्त्रीपीका निश्चय कर लिया जाता है उसी प्रकार मूढ पुरुषोंद्वारा आत्माका देहरूपसे निश्चय किया हुआ है ।

घटत्वेन यथा पृथ्वी पटत्वेनेव तन्तवः ।

विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता ॥७१॥

जैसे घटरूपसे पृथ्वी और पटरूपसे तन्तुओंका निश्चय होता है, वैसे ही मूढ पुरुषोंद्वारा आत्माका देहरूपसे निश्चय किया हुआ है ।

कनकं कुण्डलत्वेन तरङ्गत्वेन वै जलम् ।

विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता ॥७२॥

जैसे कुण्डलरूपसे सुवर्ण और तरङ्गरूपसे जलकी कल्पना होती है वैसे ही मूढ पुरुषोंद्वारा आत्माका देहरूपसे निश्चय किया हुआ है ।

चोरत्वेन यथा स्थाणुर्जलत्वेन मरीचिका ।

विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता ॥७३॥

जिस प्रकार चोररूपसे स्थाणु (ठूँठ) का और जलरूपसे मरुस्थलका निश्चय किया जाता है उसी प्रकार मूढ पुरुषोंद्वारा देहरूपसे आत्माका निश्चय किया हुआ है ।

गृहत्वेनेव काष्ठानि खड्गत्वेनेव लोहता ।

विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता ॥७४॥

जिस प्रकार काष्ठका गृहरूपसे और लोहेका खड्गरूपसे निश्चय किया जाता है उसी प्रकार मूढ़ पुरुषोंद्वारा आत्माका देहरूपसे निश्चय किया हुआ है ।

यथा वृक्षविपर्य्यासो जलाद्भवति कस्यचित् ।

तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥७५॥

जैसे जलके कारण किसीको वृक्ष उलटा दिखलायी पड़ता हो उसी प्रकार अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है ।

पोतेन गच्छतः पुंसः सर्वं भातीव चञ्चलम् ।

तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥७६॥

जहाजमें जानेवाले पुरुषको जैसे सब पदार्थ चलते हुए दिखलायी देते हैं वैसे अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है ।

पीतत्वं हि यथा शुभ्रे दोषाद् भवति कस्यचित् ।

तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥७७॥

जिस प्रकार नेत्र-दोषके कारण किसीको श्वेत वस्तुओंमें पीलापन दीख पड़ता है उसी प्रकार अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है ।

चक्षुर्भ्यां भ्रमशीलाभ्यां सर्वं भाति भ्रमात्मकम् ।

तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥७८॥

जैसे घूमती हुई आँखोंसे सब चीजें चकर काटती हुई दिखलायी देती हैं वैसे ही अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है ।

अलातं भ्रमणेनैव वर्तुलं भाति सूर्यवत् ।

तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥७९॥

जिस प्रकार अलात (जलती हुई बनैती) घुमानेसे ही सूर्यके समान गोलाकार प्रतीत होता है उसी प्रकार अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है ।

महश्चे सर्ववस्तूनामणुत्वं ह्यतिदूरतः ।

तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥८०॥

जैसे अत्यन्त दूरीके कारण सब वस्तुएँ बड़ी होती हुई भी छोटी दिखलायी पड़ती हैं वैसे ही अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है ।

सूक्ष्मत्वे सर्ववस्तूनां स्थूलत्वं चोपनेत्रतः ।

तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥८१॥

तथा जिस प्रकार उपनेत्र (सूक्ष्मवीक्षण) से सब वस्तुएँ छोटी होनेपर भी बड़ी दीख पड़ती हैं उसी प्रकार अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है ।

काचभूमौ जलत्वं वा जलभूमौ हि काचता ।

तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥८२॥

जैसे काचकी भूमिमें जल और जलमें काचका भ्रम हो जाता है, वैसे ही अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है ।

यद्वदग्नौ मणित्वं हि मणौ वा वह्निता पुमान् ।

तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥८३॥

जैसे कोई पुरुष अग्निमें मणि और मणिमें अग्नि-बुद्धि कर ले, वैसे ही अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है ।

अश्रेषु सत्सु धावत्सु सोमो धावति भाति वै ।

तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥८४॥

जिस प्रकार बादलोंके दौड़नेपर चन्द्रमा दौड़ता हुआ प्रतीत होता है उसी प्रकार अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है ।

यथैव दिग्विपर्यासो मोहाद्भवति कस्यचित् ।

तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥८५॥

जैसे किसीको मोहवश (भूलसे) दिग्भ्रम हो जाता है, वैसे ही अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है ।

यथा शशी जले भाति चञ्चलत्वे न कस्यचित् ।

तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥८६॥

जैसे किसीको जलमें चन्द्रमा हिलता हुआ दिखलायी दे उसी प्रकार अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देह-भाव देखता है ।

एवमात्मन्यविद्यातो देहाध्यासो हि जायते ।

स एवात्मा परिज्ञातो लीयते च परात्मनि ॥८७॥

इस प्रकार अविद्याके कारण आत्मामें देहाध्यास होता है; वही आत्मा ज्ञान हो जानेपर परमात्मामें लीन हो जाता है ।

सर्वमात्मतया ज्ञातं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।

अभावात्सर्वभावनां देहानां चात्मता कुतः ॥८८॥

जब समस्त स्थावर-जंगम जगत्को आत्मरूपसे जान लिया तब सम्पूर्ण भावोंका अभाव हो जानेपर देहोंका आत्मत्व ही कहाँ रह सकता है ?

आत्मानं सततं जानन् कालं नय महामते ।

प्रारब्धमखिलं भुञ्जन्तोद्वेगं कर्तुमर्हसि ॥८९॥

हे महामते ! आत्मस्वरूपको निरन्तर जानते हुए अपने सम्पूर्ण प्रारब्धका भोग करते हुए काल व्यतीत कर; तुझे उद्विग्न होना चाहिये ।

प्रारब्धका निराकरण

उत्पन्नेऽप्यात्मविज्ञाने प्रारब्धं नैव मुञ्चति ।

इति यच्छ्रूयते शास्त्रे तन्निराक्रियतेऽधुना ॥९०॥

शास्त्रमें जो ऐसा सुना जाता है कि आत्मज्ञान हो जानेपर भी प्रारब्ध नहीं छोड़ता, उसका अब निराकरण (खण्डन) किया जाता है ।

तत्त्वज्ञानोदयादूर्ध्वं प्रारब्धं नैव विद्यते ।

देहादीनामसत्यत्वाद्यथा स्वप्नो विबोधतः ॥९१॥

जाग पड़नेपर जैसे स्वप्न नहीं रहता वैसे ही देहादि असत्य होनेके कारण ज्ञानोदयके पश्चात् प्रारब्ध नहीं रहता ।

कर्म जन्मान्तरकृतं प्रारब्धमिति कीर्तितम् ।

तत्तु जन्मान्तराभावात्पुंसो नैवास्ति कर्हिचित् ॥९२॥

जन्मान्तरमें क्रिया हुआ कर्म ही प्रारब्ध कहलाता है, अतः (ज्ञानीकी दृष्टिमें) जन्मान्तरका अभाव होनेसे वह किसी अवस्थामें नहीं है ।

स्वप्नदेहो यथाध्यस्तस्तथैवायं हि देहकः ।

अध्यस्तस्य कुतो जन्म जन्माभावे हि तत्कुतः ॥९३॥

जिस प्रकार स्वप्नशरीर अध्यस्त है उसी प्रकार यह देह भी है, अध्यस्तका जन्म कैसे हो सकता है ? और जन्म न होनेपर प्रारब्ध भी कहाँसे होगा ?

उपादानं प्रपञ्चस्य मृद्गाण्डस्येव कथ्यते ।

अज्ञानं चैव वेदान्तैस्तस्मिन्नप्येकं विश्वता ॥९४॥

घड़ेके उपादान-कारण मिट्टीके समान वेदान्तग्रन्थोंमें अज्ञानको प्रपञ्चका उपादान-कारण बतलाया है; (ज्ञानसे) उसका नाश हो जानेपर फिर विश्व कहाँ ठहर सकता है ?

यथा रज्जुं परित्यज्य सर्पं गृह्णाति वै भ्रमात् ।

तद्वत्सत्यमविज्ञाय जगत्पश्यति मूढधीः ॥९५॥

जिस प्रकार मनुष्य भ्रमवश रस्सीके स्थानमें सर्प देखता है उसी प्रकार सत्यको न जाननेपर ही मूढबुद्धि संसारको देखता है ।

रज्जुरूपे परिज्ञाते सर्पभ्रान्तिर्न तिष्ठति ।

अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपञ्चः शून्यतां व्रजेत् ॥९६॥

जैसे रस्सीका रूप जान लेनेपर सर्प-भ्रम नहीं रहता उसी प्रकार अधिष्ठान (ब्रह्म-) को जान लेनेपर प्रपञ्च शून्यरूप हो जाता है ।

देहस्यापि प्रपञ्चत्वात्प्रारब्धावस्थितिः कुतः ।

अज्ञानिजनबोधार्थं प्रारब्धं वक्ति वै श्रुतिः ॥९७॥

देह भी प्रपञ्च ही है, तो फिर प्रारब्ध कहाँ रह सकता है ? बस, अज्ञानियोंको समझानेके लिये ही श्रुति प्रारब्ध बतलाती है ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।

बहुत्वं तन्निषेधार्थं श्रुत्या गीतं च यत्स्फुटम् ॥९८॥

क्योंकि श्रुतिने 'उस परावरके देख लेनेपर इसके (सम्पूर्ण) कर्म क्षीण हो जाते हैं' इस वाक्यमें उस (प्रारब्ध) का निषेध करनेके लिये ही स्पष्टतया बहुवचनका प्रयोग किया है ।

उच्यतेऽज्ञैर्बलाच्चैतत्तदानर्थद्वयागमः ।

वेदान्तमतहानं च यतो ज्ञानमिति श्रुतिः ॥९९॥

यदि आज्ञानीजन बलात्कारसे (ज्ञानीके) प्रारब्धका प्रतिपादन करेंगे तो इस (प्रारब्धरूप द्वैतके स्वीकार करने) से (मोक्षाभाव और ज्ञान-सम्प्रदायका उच्छेदरूप) दो अनर्थ उपस्थित होंगे तथा अद्वैत वेदान्त-सिद्धान्तकी भी हानि होगी । इसलिये (प्रारब्धका प्रतिपादन करनेवाली व्यावहारिक श्रुतियोंको छोड़कर) जिनसे ज्ञान प्राप्त हो उन्हीं श्रुतियोंको ग्रहण करना चाहिये ।

निदिध्यासनके पंद्रह अङ्ग

त्रिपञ्चाङ्गान्यथो वक्ष्ये पूर्वोक्तस्य हि लब्धये ।

तैश्च सर्वैः सदा कार्यं निदिध्यासनमेव तु ॥ १०० ॥

अब मैं पूर्वोक्त (ज्ञाननिष्ठा) की प्राप्तिके लिये पंद्रह अङ्ग बतलाता हूँ । उन सबसे सर्वदा निदिध्यासन (अभ्यास) करना चाहिये ।

नित्याभ्यासादृते प्राप्तिर्न भवेत्सच्चिदात्मनः ।

तस्माद्ब्रह्म निदिध्यासेज्जिज्ञासुः श्रेयसे चिरम् ॥ १०१ ॥

निरन्तर अभ्यास किये बिना सच्चित्स्वरूप आत्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती । अतः जिज्ञासुको चाहिये कि कल्याण-प्राप्तिके लिये चिरकालतक ब्रह्म-चिन्तन करे ।

यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालतः ।

आसनं मूलबन्धश्च देहसाम्यं च दृक्स्थितिः ॥ १०२ ॥

प्राणसंयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा ।

आत्मध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्यङ्गानि वै क्रमात् ॥ १० ३ ॥

यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूलबन्ध, देहकी समता, नेत्रोंको स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये क्रमसे पंद्रह अङ्ग बतलाये गये हैं ।

सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः ।

यमोऽयमिति सम्प्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः ॥ १० ४ ॥

‘सब ब्रह्म ही है’ ऐसे ज्ञानसे इन्द्रियोंका वशीभूत हो जाना यम कहलाता है । इसका बारम्बार अभ्यास करना चाहिये ।

सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः ।

नियमो हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः ॥ १० ५ ॥

सजातीय वृत्तिका प्रवाह और विजातीयका तिरस्कार—यही परमानन्दरूप नियम है । बुद्धिमान् लोग इसका नियमपूर्वक पाळन करते हैं ।

त्यागः प्रपञ्चरूपस्य चिदात्मत्वावलोकनात् ।

त्यागो हि महतां पूज्यः सद्यो मोक्षमयो यतः ॥ १० ६ ॥

प्रपञ्चको चेतनस्वरूप देखनेसे उसके रूपका त्याग करना ही महान् पुरुषोंका वन्दनीय त्याग है, क्योंकि वह तुरन्त मोक्ष देनेवाला है ।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।

यन्मौनं योगिभिर्गम्यं तद्भजेत्सर्वदा बुधः ॥ १० ७ ॥

जिसे न पाकर मनसहित वाणी लौट आती है तथा जिस मौनतक योगियोंकी ही गति है विद्वान् सदा उसीको धारण करे ।

वाचो यस्मान्निवर्तन्ते तद्वक्तुं केन शक्यते ।

प्रपञ्चो यदि वक्तव्यः सोऽपि शब्दविवर्जितः ॥ १०८ ॥

जहाँसे वाणी लौट आती है उस (ब्रह्म) का भला कौन वर्णन कर सकता है ? और यदि प्रपञ्चको ही वक्तव्य (शब्दका विषय) मानें तो वह भी शब्दरहित है ।*

इति वा तद्भवेन्मौनं सतां सहजसंज्ञितम् ।

गिरा मौनं तु बालानां प्रयुक्तं ब्रह्मवादिभिः ॥ १०९ ॥

अतः सत्पुरुषोंका दूसरा स्वाभाविक मौन यह (प्रपञ्चका अशब्दत्व) भी हो सकता है । ब्रह्मवादियोंने वाणीका मौन तो मूर्खोंके लिये बतलाया है ।

आदाव्रन्ते च मध्ये च जनो यस्मिन्न विद्यते ।

येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः ॥ ११० ॥

* जो वस्तु सत् या असत् होती है वही शब्दका विषय हो सकती है । प्रपञ्चको, ज्ञानकालमें बाधित हो जानेके कारण, सत् नहीं कह सकते और अज्ञानावस्थामें प्रतीत होनेके कारण असत् भी नहीं कह सकते । अतः वह शब्दका विषय नहीं—वह अनिर्वचनीय है । इसके सिवा शब्द और उससे कही जानेवाली वस्तुओंका सम्बन्ध काल्पनिक है वास्तविक नहीं । इसलिये भी प्रपञ्चको शब्दका विषय नहीं कहा जा सकता ।

जिसमें आदि, अन्त और मध्यमें कोई भी जन नहीं है तथा जिससे यह जगत् निरन्तर व्याप्त है वही देश जनशून्य कहा गया है ।

कलनात्सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः ।

कालशब्देन निर्दिष्टो ह्यखण्डानन्द अद्वयः ॥१११॥

ब्रह्मा आदि समस्त भूतोंकी एक पलमें ही कलना करनेके कारण अद्वितीय अखण्डानन्दरूप ब्रह्म ही काल-शब्दसे कहा जाता है ।

सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम् ।

आसनं तद्विजानीयान्नेतरत्सुखनाशनम् ॥११२॥

जिस अवस्थामें सुखपूर्वक निरन्तर ब्रह्मचिन्तन हो सके उसे ही आसन जानना चाहिये; दूसरा सुखनाशक आसन आसन नहीं है ।

सिद्धं यत्सर्वभूतादि विश्वाधिष्ठानमव्ययम् ।

यस्मिन् सिद्धाः समाविष्टास्तद्वै सिद्धासनं विदुः ॥११३॥

जो समस्त भूतोंका आदिकारण है, विश्वका अविनाशी अविष्टान है और जिसमें सिद्धजन स्थित रहते हैं उसे ही सिद्धासन समझना चाहिये ।

यन्मूलं सर्वभूतानां यन्मूलं चित्तबन्धनम् ।

मूलबन्धः सदा सेव्यो योगोऽसौ राजयोगिनाम् ॥११४॥

जो समस्त भूतोंका मूल है और जिसके आश्रयसे चित्त स्थिर

किया जाता है । उस मूलबन्धका सदा सेवन करना चाहिये । यही राजयोगियोंका योग है ।

अङ्गानां समतां विद्यात्समे ब्रह्मणि लीयते ।

नो चेन्नैव समानत्वमृजुत्वं शुष्कवृक्षवत् ॥११५॥

जिस समय चित्त समब्रह्ममें लीन हो जाय उसी समय अङ्गोंकी समता समझनी चाहिये । अन्यथा सूखे वृक्षके समान अङ्गोंकी निश्चलताका नाम समता नहीं है ।

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत् ।

सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रावलोकिनी ॥११६॥

दृष्टिको ज्ञानमयी करके संसारको ब्रह्ममय देखे । यही दृष्टि अति उत्तम है; नासिकाके अग्रभागको देखनेवाली नहीं ।

द्रष्टृदर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत् ।

दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकिनी ॥११७॥

जहाँ द्रष्टा, दर्शन और दृश्य (इस त्रिपुटी) का अभाव हो जाता है वहीं दृष्टि करनी चाहिये, नासिकाके अग्रभागपर नहीं ।

चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात् ।

निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते ॥११८॥

चित्तादि समस्त भावोंमें ब्रह्मरूपसे ही भावना करनेसे सम्पूर्ण

वृत्तियोंका निरोध हो जाता है । वही प्राणायाम कहलाता है ।

निशेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरणः ।

ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायुरीरितः ॥११९॥

प्रपञ्चका निषेध करना रेचक-प्राणायाम है और 'मैं ब्रह्म ही हूँ' ऐसी जो वृत्ति है वह पूरक-प्राणायाम कहलाता है ।

ततस्तद्वृत्तिनैश्वल्यं कुम्भकः प्राणसंयमः ।

अयं चापि प्रबुद्धानामज्ञानां प्राणपीडनम् ॥१२०॥

फिर उस (ब्रह्माकार) वृत्तिकी निश्चलता ही कुम्भक-प्राणायाम है । जाग्रत् पुरुषोंके लिये तो यही क्रम है, अज्ञानियोंके लिये प्राणपीडन ही प्राणायाम है ।

विषयेष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश्चिति मज्जनम् ।

प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो मुमुक्षुभिः ॥१२१॥

विषयोंमें आत्मभाव करके मनको चेतनमें डुबो देनेको ही प्रत्याहार जानना चाहिये । मुमुक्षुजन उसीका अभ्यास करें ।

• यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात् ।

मनसो धारणं चैव धारणा सा परा मता ॥१२२॥

मन जहाँ-जहाँ जाय वहीं-वहीं ब्रह्मका साक्षात्कार करते हुए मनको स्थिर करना ही उत्तम धारणा मानी गयी है ।

ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालम्बतया स्थितिः ।

ध्यानशब्देन विख्याता परमानन्ददायिनी ॥१२३॥

‘मैं ब्रह्म ही हूँ’ इस सद्वृत्तिसे जो परमानन्ददायिनी निरालम्ब स्थिति होती है वही ‘ध्यान’ शब्दसे प्रसिद्ध है ।

निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः ।

वृत्तिविस्मरणं सम्यक् समाधिर्ज्ञानसंज्ञकः ॥१२४॥

निर्विकार तथा ब्रह्माकारवृत्तिसे जो पूर्णतया वृत्तिहीनता हो जाती है वही ज्ञानसमाधि है ।

एवं चाकृतिमानन्दं तावत्साधु समभ्यसेत् ।

वश्यो यावत्क्षणात्पुंसः प्रयुक्तः सम्भवेत्स्वयम् ॥१२५॥

इस प्रकार इस स्वाभाविक आनन्दका तबतक भली प्रकार अभ्यास करे जबतक कि चित्तको लगानेपर एक क्षणमें ही वह अपने वशीभूत न हो जाय ।

ततः साधननिर्मुक्तः सिद्धो भवति योगिराट् ।

तत्स्वरूपं न चैकस्य विषयो मनसो गिराम् ॥१२६॥

फिर वह योगिराज सब साधनोंसे छूटकर सिद्ध हो जाता है । वही उसका स्वरूप है; वह किसी एकके मन या वाणीका विषय नहीं है ।

समाधिके विघ्न

समाधौ क्रियमाणे तु विघ्ना आयान्ति वैबलात् ।

अनुसन्धानराहित्यमालस्यं भोगलालसम् ॥१२७॥

लयस्तमश्च विक्षेपो रसास्वादश्च शून्यता ।

एवं यद्विघ्नबाहुल्यं त्याज्यं ब्रह्मविदा शनैः ॥१२८॥

समाधिका अभ्यास करनेपर अनुसन्धानराहित्य, आलस्य, भोगवासना, लय, तम, विक्षेप, रसास्वाद और शून्यता आदि विघ्न बलात्कारसे अवश्य आते हैं । इस प्रकार जो अनेक विघ्न आते हैं, ब्रह्मवेत्ता को उन्हें धीरे-धीरे त्यागना चाहिये ।

भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता ।

पूर्णवृत्त्या हि पूर्णत्वं तथा पूर्णत्वमभ्यसेत् ॥१२९॥

(समाधिके समय) भाववृत्ति रहनेसे भावत्व, शून्यवृत्ति रहनेसे शून्यत्व और पूर्णवृत्ति रहनेसे पूर्णत्वकी प्राप्ति होती है । अतः पूर्णत्वका अभ्यास करे ।

ब्राह्मी वृत्तिका महत्त्व

ये हि वृत्तिं जहत्येनां ब्रह्माख्यां पावनीं पराम् ।

वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः ॥१३०॥

जो लोग इस परम पवित्र ब्राह्मी वृत्तिका त्याग करते हैं वे वृथा ही जीते हैं तथा वे पशुओंके समान हैं ।

ये हि वृत्तिं विजानन्ति ये ज्ञात्वा वर्धयन्त्यपि ।

ते वै सत्पुरुषा धन्या वन्द्यास्ते भुवनत्रये ॥१३१॥

जो इस वृत्तिको जानते हैं और जानकर बढ़ाते भी हैं वे ही सत्पुरुष हैं तथा वे ही त्रिलोकीमें धन्य और वन्दनीय भी हैं ।

येषां वृत्तिः समावृद्धा परिपक्वा च सा पुनः ।

ते वै सद्ब्रह्मतां प्राप्ता नेतरे शब्दवादिनः ॥१३२॥

जिनकी यह ब्राह्मी वृत्ति बढ़ी हुई और परिपक्व होती है वे ही अति श्रेष्ठ ब्रह्मभावको प्राप्त होते हैं, केवल शब्दसे ही कहनेवाले अन्य पुरुष नहीं ।

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः ।

ते ह्यज्ञानितमा नूनं पुनरायान्ति यान्ति च ॥१३३॥

जो ब्रह्मवार्तामें कुशल हैं किन्तु ब्राह्मी वृत्तिसे रहित और रागयुक्त हैं, निश्चय ही वे अत्यन्त अज्ञानी हैं और बारम्बार जन्मते-मरते रहते हैं ।

निमेषार्थं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना ।

यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुकादयः ॥१३४॥

ब्रह्मादि (लोकपालों), सनकादि (सिद्धों) और शुक्रदेवादि (परमहंसों) के समान वे आधे पल भी ब्रह्ममयी वृत्तिके बिना नहीं रहते ।

वृत्तिज्ञानका साधन

कार्ये कारणतायाता कारणे न हि कार्यता ।

कारणत्वं ततो गच्छेत्कार्याभावे विचारतः ॥१३५॥

कार्यमें कारण अनुगत होता है, कारणमें कार्य अनुगत नहीं होता । अतः विचार करनेसे कार्यका अभाव होनेके कारण कारणकी कारणता भी नहीं रहती ।

अथ शुद्धं भवेद्वस्तु यद्वै वाचामगोचरम् ।

द्रष्टव्यं मृद्घटेनैव दृष्टान्तेन पुनः पुनः ॥१३६॥

इस प्रकार जो वाणीका अविषय है वह वस्तु शुद्ध है । इसका बारम्बार मिट्टी और घड़ेके दृष्टान्तसे ही विचार करना चाहिये ।

अनेनैव प्रकारेण वृत्तिर्ब्रह्मात्मिका भवेत् ।

उदेति शुद्धचित्तानां वृत्तिज्ञानं ततः परम् ॥१३७॥

इसी प्रकारसे वृत्ति ब्रह्मात्मिका हो जाती है और फिर उन शुद्धचित्त पुरुषोंके अन्तःकरणमें वृत्तिज्ञान उदय होता है ।

कारणं व्यतिरेकेण पुमानादौ विलोकयेत् ।

अन्वयेन पुनस्तद्धि कार्ये नित्यं प्रपश्यति ॥१३८॥

पुरुषको चाहिये कि पहले वह कारणको (कार्यसे) अलग करके देखे, पीछे वह सर्वदा उसे कार्यमें अनुगतरूपसे देखने लगता है ।

कार्ये हि कारणं पश्येत् पश्चात्कार्यं विसर्जयेत् ।

कारणत्वं ततो नश्येदवशिष्टं भवेन्मुनिः ॥१३९॥

पहले कार्यहीमें कारणको देखे और फिर कार्यको त्याग दे ।
इस प्रकार कारणताका नाश हो जाता है और मुनि (कार्य-कारणतासे
रहित) अवशिष्टरूप हो जाता है ।

भावितं तीव्रवेगेन वस्तु यन्निश्चयात्मना ।

पुमांस्तद्धि भवेच्छीघ्रं ज्ञेयं भ्रमरकीटवत् ॥१४०॥

जिस वस्तुका निश्चयपूर्वक तीव्र वेगसे चिन्तन किया जाता
है—पुरुष तुरंत वही हो जाता है—यह बात भुंगी कीड़ेके दृष्टान्तसे
जाननी चाहिये ।

अदृश्यं भावरूपं च सर्वमेतच्चिदात्मकम् ।

सावधानतया नित्यं स्वात्मानं भावयेद्बुधः ॥१४१॥

यह सम्पूर्ण जगत् अदृश्य भावरूप चेतनमय है, इस प्रकार बुद्धिमान्
पुरुष सावधान होकर नित्यप्रति अपने आत्माका चिन्तन करे ।

दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत् ।

विद्वान्नित्यसुखे तिष्ठेद्विया चिद्रसपूर्णया ॥१४२॥

विद्वान्को चाहिये किं दृश्यको अदृश्य करके उसका ब्रह्मरूपसे
चिन्तन करे और चिद्रसपूर्ण बुद्धिसे नित्य सुखमें मग्न रहे ।

एभिरङ्गैः समायुक्तो राजयोग उदाहृतः ।

किञ्चित्पक्वकषायाणां हठयोगेन संयुतः ॥१४३॥

परिपक्वं मनो येषां केवलोऽयं च सिद्धिदः ।

गुरुदैवतभक्तानां सर्वेषां सुलभो जवात् ॥१४४॥

इन सब अङ्गोंसे युक्त योगका नाम राजयोग है । जिनकी वासनाएँ कुछ कम क्षीण हुई होती हैं उन्हें यह हठयोगके सहित और जिनका चित्त परिपक्व (वासनाहीन) होता है उन्हें अकेला ही सिद्धि देनेवाला होता है । यह सभी गुरु और ईश्वरके भक्तोंको तुरन्त सुगमतासे प्राप्त हो सकता है ।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपाद-

शिष्यश्रीमच्छङ्करभगवता कृताऽपरोक्षानुभूतिः समाप्ता

